International Journal of Applied Research 2017; 3(7): 809-811

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(7): 809-811
www.allresearchjournal.com
Received: 18-05-2017
Accepted: 19-06-2017

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज, कासगंज (उ0प्र0)

Correspondence
डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज, कासगंज (उ0प्र0)

महाभाष्य में 'कृदतिङ्' सूत्र का प्रत्याख्यान

डॉ० ब्रजेन्द्र कुमार

प्रस्तावना

शोध पत्र में 'कृत संज्ञा' करने वाले पाणिनि के 'कृदतिङ्' (अष्टाध्यायी, 3–1–93) सूत्र का महाभाष्यकार के द्वारा किए गये प्रत्याख्यान को कैय्यटकृत प्रदीप एवं शिवरामेन्द्र सरस्वतीकृत सिद्धान्तरत्नप्रकाश टीका के आलोक में समझने का प्रयास किया गया है।

पतंजलि ने पाणिनि शब्दानुशासन पर महाभाष्य नामक आकर ग्रन्थ का प्रणयन किया है। महाभाष्य का आधार पाणिनि के 1701 सूत्र एवं कात्यायन के सम्पूर्ण वार्त्तिक हैं। पतंजलि ने महाभाष्य में उपयोगिता के आधार पर अनेक वार्त्तिकों एवं कतिपय सूत्रों को अनुपादेय मानते हुये उनका प्रत्याख्यान किया है।

इस शोध पत्र में 'कृत् संज्ञा' करने वाले पाणिनि के 'कृदतिङ्' (अष्टाध्यायी, 3–1–93) सूत्र का महाभाष्यकार के द्वारा किए प्रत्याख्यान को कैय्यटकृत प्रदीप एवं शिवरामेन्द्र सरस्वतीकृत सिद्धान्तरत्नप्रकाश टीका के आलोक में समझने का प्रयास किया गया है।

> एकादेशे कृते नास्ति व्यवधानम्। एकादेशः पूर्वविधौ
> स्थानिवद्भवतीतिं स्थानिवद्भावाद् व्यवधानमेव।
> महा0–3–1–93

पतञ्जलि ने 'कृदतिङ्' सूत्र के 'अतिङ्.' पद को निष्प्रयोजन मानते हुये उसका प्रत्याख्यान किया है।सूत्र में अतिङ् पद के अनाश्रयण से तिङन्तों की भी 'कृत्' संज्ञा हो जायेगी। 'तिङन्त' की 'कृत्' संज्ञा होने पर उत्पन्न होने वाले दोषों की उद्भावना करके पतञ्जलि ने प्रत्येक का समाधान कर दिया है। इस श्रंखला में अन्तिम दोष तुगागम की उद्भावना की गई है कि 'पचति' 'पठति' के समान 'चिकीर्षति' में 'चिकीर्ष' की धातु संज्ञा [1] होती है। 'चिकीर्ष तिप' इस अवस्था में 'ति' की 'कृत्' संज्ञा होने से ह्रस्वान्त धातु 'चिकीर्ष' को तुक– आगम [2] प्राप्त होता है।

पतञ्जलि इसका समाधान करते हैं कि 'चिकीर्ष शप्त्रअ ति' यहाँ मध्य में 'शप्' का व्यवधान है क्योंकि 'ति' इस 'कृत' के परे रहते विहित तुगागम अव्यवहित पूर्व में होना चाहिए।

तुक्–आगमसमर्थक पूर्वपक्ष 'शप्' के व्यवधान का समाधान करता है। उसका कथन है कि 'चिकीर्ष अ ति' इस दशा में 'अतो गुणे' [3] सूत्र से गुणरूप एकादेश होकर 'चिकीर्षति' बनता है। एकादेश होने से यहाँ 'शप्' का व्यवधान नहीं होता है।

भाष्यकार ने इस विषय में सिद्धान्तपक्ष के रूप में 'शप्' के व्यवधान को स्थापित किया है। उपर्युक्त एकादेश से 'शप्' का व्यवधान समाप्त नहीं होता है, क्योंकि गुणरूप परत्वापेक्षा से निष्पन्न यह एकादेश 'चिकीर्ष' इस पूर्व की अपेक्षा से विहित 'तुक्' कार्य के प्रति 'स्थानिवद्' [4] होता है। स्थानिवद्भाव होने से 'शप्' का व्यवधान यथावत् बना रहता है। परिणामस्वरूप 'चिकीर्षति' में 'कृत्' संज्ञा होने पर भी तुगागम नहीं होता है। अतः कृत्संज्ञा विधायक सूत्र में 'अतिङ्' पद की कोई आवश्यकता होने से वह प्रत्याख्येय है।

कैय्यट ने एतद्विषयक अपनी व्याख्या में प्रश्नमुख से स्थानिवद्भाव के बाधकत्व का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि यदि स्थानिवद्भाव को परविहित होने के कारण अन्तवद्भाव' [5] बाधित्व कर दे तो प्रकृत में 'शप्' धातुत्व के रूप में उपपन्न हो जायेगा। जिससे 'शप्' का व्यवधान समाप्त होकर तुगागम हो जायेगा। [6]

पूर्वपक्ष के रूप में उत्थापित प्रश्न का स्वयं कैय्यट ने समाधान प्रस्तुत किया है कि उपर्युक्त प्रश्न में वर्णित बाध्यबाधकत्व उचित नहीं है।

वस्तुतः स्थानिवद्भाव विधायक सूत्र में प्रयुक्त 'पद' शब्द इष्टवाचक है। अतः 'स्थानिवद्भाव' ही 'अन्तवद्भाव' का बाधक होता है। इसलिए तुगागमरूप दोष प्रकृत प्रसंग में उत्पन्न नहीं होता है। [7]

भाष्यकार के द्वारा 'अतिङ्' के प्रत्याख्यान प्रसंग में कैय्यट ने भी एक विप्रतिपत्ति का उल्लेख किया है 'अतिङ्' के अभाव में 'पचेरन्' की प्रातिपदिक संज्ञा [8] होकर प्रातिपदिकान्त नलोप [9] प्राप्त होता है। [10] इसके उत्तर में कैय्यट का कहना है कि पाणिनि ने 'झस्य रन्' [11] सूत्र में 'झ' के स्थान पर 'रन्' आदेश का विधान किया है। अतः नकारसहित 'रन्' का पाठ होने के सामर्थ्य से यहाँ नकार लोप नहीं होता है। [12] अतः 'कृत्' संज्ञा होने पर भी 'पचेरन्' इस अभीष्ट पद को कोई हानि नहीं होती है।

इस प्रसंग में कैय्यट ने एक और विसंगति का अपनी व्याख्या में समाश्रयण किया है। यदि 'अतिङ्' का ग्रहण कृत् संज्ञा में नहीं होगा तो 'विचीयात्' इस आशीर्लिङ् के प्रयोग में अकृत् यकार की अपेक्षा से 'अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः' [13] सूत्र से होने वाला दीर्घत्व प्राप्त नहीं हो सकेगा। कैय्यट इसे दोष नहीं मानते हैं। दीर्घविधायक इस सूत्र में 'कृत्' के साथ 'सार्वधातुक' का भी प्रतिषेध किया जाना इस बात का ज्ञापक है कि 'अकृत्' के रूप में किया गया प्रतिषेध 'तिङ्' का समाश्रयण नहीं करता है, अन्यथा उसमें 'सार्वधातुक' ग्रहण की आवश्यकता नहीं होती। [14] अतः 'कृत्' संज्ञा होने पर भी 'विचीयात्' में ज्ञापकबल से दीर्घ हो ही जायेगा। अन्ततः भाष्यकार के द्वारा किया गया 'अतिङ्' का प्रत्याख्यान उचित है, यह स्थापित होता है।

शिवरामेन्द्र सरस्वती 'चिकीर्षति' में तुगागम की प्राप्ति के लिए किंचित भिन्न प्रक्रिया होती है, ऐसा मानते हैं। उनके अनुसार 'चिकीर्षति' में 'शप्' और 'पररूप' एकादेश होने के बाद 'अन्तादिवच्च' सूत्र से अन्तवद्भाव से 'शप्' भी धातुग्रहण से गृहीत् होता हैं। [15] इस अवस्था में उसे तुगागम की प्राप्ति की सम्भावना की जाती है।

इस आधार पर शिवरामन्द्र ने कैय्यट के द्वारा की गयी प्रकृतिवद्भाव के द्वारा अन्तवद्भाव का बाध्यरूप व्याख्या का खण्डन किया है। कैय्यट की व्याख्या को 'तत्तुच्छम्' कहते हुये खण्डन का कारण स्पष्ट किया है कि एकादेश होने पर सर्वप्रथम अन्तवद्भाव की प्रवृत्ति से 'शप्' धात्वन्तवत होकर 'धातु' के रूप में गृहीत होने पर उसे 'तुक्' की प्राप्ति सम्भव होती है। इस स्थिति में प्रकृतिवद्भाव की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। किन्तु कैय्यट ने इसके विपरीत वर्णन किया है अतः तद्विषयक उनके शंका व समाधान दोनों ही असम्भवोक्ति हैं। [16] अतः त्याज्य हैं।

खण्डन के इस क्रम में शिवरामेन्द्र ने कैय्यट के इस प्रतिपादन का भी निरसन किया है कि 'पचेरन्' की 'अतिङ्' के अभाव में 'कृत्' संज्ञा व प्रातिपदिक संज्ञा होने से प्रातिपदिकान्त नलोप की प्राप्ति तथा 'झस्य रन्' इस उच्चार्यमाणसामार्थ्य से नलोप का अभाव होता है। शिवरामेन्द्र इस व्याख्या के अस्वीकार का कारण स्पष्ट करते हुये कहते हैं कि यदि 'अतिङ्' पद का ग्रहण नहीं होगा तो 'पचेरन्' इस पद की सिद्धि सदा नकारोच्चारण के अधीन ही होगी। नकारोच्चारण के अभाव में 'पचतिरूपम्' [17] के समान 'पचेर' पद की प्रातिपदिकसंज्ञा व स्वाद्युत्पत्ति होकर 'पचेर सु' इस अवस्था में 'अतोऽम्' [14] से 'सु' को 'अम्' व पूर्वरूप एकादेश [19] होकर 'पचेरम्' इत्यादि रूपों की निष्पत्ति होने लगेगी। [20]

इस प्रकार के अनिष्टरूपों की निष्पत्ति न हो, इसके लिए 'कृत्' संज्ञा विधायक सूत्र में 'अतिङ्' ग्रहण अवश्य किया जाना चाहिए।[21] शिवरामेन्द्र कैय्यट के साथ–साथ पतञ्जलि के 'अतिङ्' प्रत्याख्यान से सहमत नहीं हैं।

'कृत्' संज्ञाविधायक पाणिनिप्रणीत 'कृदतिङ्' सूत्र में 'अतिङ्' पद का आचार्यपतञ्जलि ने प्रयोजनाभाव के कारण प्रत्याख्यान किया है। पतञ्जलि के मत से सहमत होकर कैय्यट, अन्नंभट्ट, नारायण एवं नागेश ने उनका अनुसरण किया है।

काशिकाकार जयादित्व भाष्यकार के इस मत से मतैक्य नहीं रखते हैं। उन्होंने इस सूत्र की वृत्ति में 'अतिङ्.' पद का पदकृत्य करते हुये प्रत्युदाहरण के रूप में 'चीयात्', 'स्तूयात्– पदों को उद्धृत किया है। [22] काशिकावृत्ति की व्याख्याद्वय जिनेन्द्रबुद्धिकृत 'न्यास' एवं हरदत्तमिश्रकृत 'पदमञ्जरीकार' भी काशिकाकार का अनुगमन करती है। न्यासकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''यदि अतिङ् न कहें तो 'तिङ्' की भी 'कृत्' संज्ञा हो जाये, तदनन्तर 'अकृत्सार्वधातुकयोः' से होने वाला दीर्घत्व 'चीयात्' 'स्तूयात्' को नहीं होगा। 'अतिङ्' के विद्यमान होने पर अकृत् यकार होने से होता है।'' [23] पदमञ्जरीकार भी 'चीयात्' में ज्ञापकादि से वृद्धि की प्राप्ति के स्थान पर 'अतिङ्.' पदाश्रयण करके प्रतिषेध द्वारा वृद्धि प्राप्ति के पक्षधर हैं तथा वृत्तिकार को भी यही अभीष्ट है, ऐसा वे उल्लेख करते हैं। [24]

शिवरामेन्द्र भी 'अतिङ्' पदग्रहण के पक्षधर हैं। [25] इस तथ्य को ध्यान में रखकर यदि कैय्यट व शिवरामेन्द्र की व्याख्याओं की समीक्षा की जाये तो यह तथ्य स्वाभाविकरूप से दृष्टिगत होता है कि कैय्यट की व्याख्या भाष्यकार के मन्तव्य को पुष्ट करती है वहीं शिवरामेन्द्र उनसे भिन्न विचार प्रकट कर रहे हैं। उदाहरण के लिए 'पचेरन्' के विषय में कैय्यट ने नकारलोप का दोष दर्शाकर पुनः स्वयं 'झस्य रन्' के उच्चारण सामर्थ्यरूप समाधान से उसे भाष्यानुरूप भी सिद्ध कर दिया है। जबकि शिवरामेन्द्र ने इसके विपरीत 'पचेरन्' इस अनिष्ट रूप की निष्पत्ति प्रदर्शित करते हुये 'पचेरन्' की सिद्धि को नकारोच्चारणाधीन होना बताया है। कैय्यट व शिवरामेन्द्र के मध्य एक अन्य मतभेद प्रकृत प्रसंग में दृष्टिगोचर होता है। यह मतभेद प्रक्रिया सम्बन्धी है। कैय्यट 'चिकीर्षति' में 'शप्' का पररूप एकादेश करके 'अन्तवद्भाव' को बाधकर स्थानिवद्भाव से 'शप्' को पुनः व्यवधान के रूप में उपस्थित मानते हैं जिससे 'तुक' आगम नहीं होता है।

'अन्तवद्भाव' भाव को स्थानिवद्भाव के द्वारा बाधित किया जाता है। जिसके हेतु के रूप में कैय्यट 'परत्वात्' पद का प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ उन्होंने **'परषब्दस्येष्टवाचित्वात्'** किया है। अर्थात् यहाँ अभीष्टता के कारण स्थानिवद्भाव से अन्तवद्भाव को बाधित किया जायेगा। यह हेतु नहीं अपितु हेत्वाभास [26] प्रतीत होता है क्योंकि इसी अभीष्ट हेतु का प्रयोग करके कोई अन्य अन्तवद्भाव से स्थानिवद्भाव को बाधित कर सकता है। अतः यह विचारणीय है।

नागेश का मत है कि ''अन्तवद्भाव प्रायिक है, जबकि स्थानिवद्भाव अभाव का अतिदेश है। अतः उसके निषेधक होने से 'निषेधाष्च बलीयांसः [27] इस न्यायानुसार 'अचःपरस्मिन् पूर्वविधौ' की ही प्रवृत्ति होती है। अतः यह अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है।''[28] वहीं शिवरामेन्द्र सर्वप्रथम एकादेश तथा अन्तवद्भाव से 'शप्' को धातुत्व का अभिधान प्राप्त होता है, ऐसा मानते हैं। पुनः तदाश्रय से तुगागम की प्राप्ति होने पर स्थानिवद्भाव की उपस्थिति होती है। यहाँ बाधकत्व की कोई आवश्यकता नहीं है अपितु 'शप्' का व्यवधानत्व तिरोहित होकर 'तुक्' की प्राप्ति होने लगती है। तुगागम न हो एतदर्थ 'अतिङ्.' पाठ आवश्यक है ऐसा शिवरामेन्द्र का आशय है।

इस प्रसंग में जैसा कि विवेचन से स्पष्ट है कि दो भिन्न मत हैं। यदि भाष्याशय के अनुसार व्याख्या की समीक्षा की जाये तो कैय्यट भाष्यानुरूप व शिवरामेन्द्र उसके विरूद्ध हैं। किन्तु यदि 'अतिङ्' अप्रत्याख्यान पक्ष की दृष्टि से विचार करें तो शिवरामेन्द्र की व्याख्या सर्वथा उचित प्रतीत होती है।

संदर्भ सूची

1. सनाद्यन्ता धातवः। पा0सू0–3–1–32।
2. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। पा0सू0–6–1–70।
3. पा0सू0–6–1–97।
4. अचः परस्मिन् पूर्वविधौ। पा0सू0–1–1–57।
5. अन्तादिवच्च। पा0सू00–6–1–84।

6. ननु स्थानिवद्भावं बाधित्वा परत्वादत्तवद्भावेन भाव्यम्। प्रदीप,3–1–93।
7. परशब्दस्येष्टवाचित्वात् स्थानिवद्भाव एवान्तभावस्य बाधकः। प्रदीप, वहीं
8. कृत्तद्धितसमासाश्च। पा0सू0–1–2–46।
9. नलोपः प्रातिपदिकान्तस्य। पा0सू0–8–2–7।
10. नन्वतिङिति प्रत्याख्यायमाने पचेरन्निति प्रातिपदिकान्तत्वान्नकारलोपः प्राप्नोति। प्रदीप, वहीं।
11. पा0सू0–3–4–105।
12. 'झस्य र'न्निति नकारोच्चारणसामर्थ्यान्न न भविष्यति। प्रदीप, वहीं।
13. पा0सू0–7–4–25।
14. इह तर्हि 'विचीया'दिति कृद्यकारत्वाद्दीर्घो न प्राप्नोति। एषोऽप्यदोषः। सार्वधातुकप्रतिषेधो ज्ञापयत्यकृदिति प्रतिषेधास्तिङो न भवति। प्रदीप, वहीं।
15. 'चिकीर्षती'त्यत्र प्राप्नोतीति। शवेकादेशस्यान्तवद्भावेन धातुग्रहणेन ग्रहणादिति शेषः।रत्नप्रकाश–3–1–93।
16. यत्तु 'स्थानिवद्भावं..... एवान्तवद्भावस्य बाधकः' इति। तत्तुच्छम्, अन्तवद्भावप्रवृत्युत्तरमेकादेशान्तस्य धातुत्वे सति तदाश्रयेण तुगागमे कर्त्तव्ये स्थानिवद्भावस्य जायमानत्वेनशङ. कासमाधानयोरूभयोरप्यसंभववदुक्तिकत्वात्। रत्नप्रकाश, वहीं।
17. प्रशंसायां रूपप्। पा0सू0–5–3–66।
18. पा0सू0–7–1–24।
19. अमि पूर्वः। पा0सू0–6–1–105।
20. यदप्युक्तम्– ''नन्वतिङि.ति.....नकारोच्चारण सामर्थ्यान्नभविष्यति'' इति। तदपि न, नकारोच्चारणाभावे पचतिरूपमित्यादाविवातोऽमि 'पचेरम्' इत्यादिरूपापत्या चचेरन्निति रूपसिद्धेर्नकारोच्चारणधीनत्वात्। रत्नप्रकाश, वहीं।
21. तस्मात् कर्त्तव्यमेवातिङ्.ग्रहणम्। रत्नप्रकाश, वहीं।
22. अतिङिति किम्? चीयात्। स्तूयात्। काशिकावृत्ति–3–1–93।
23. अतिङिति यदि नोच्येत, तिङोऽति कृत्संज्ञा स्यात्, ततश्च 'अकृत्सार्वधातुकयोः' इति दीर्घत्वं न भवेत। अतिङिति तु सत्यकृद्यकारत्वाद् भवति। न्यास–3–1–93
24. तदेतस्मादन्यार्थादतिङिति प्रतिषेधादेव सिद्धे चीयादित्यादौ ज्ञापकं नाश्रयितव्यमिति वृत्तिकारो मन्यते स्म। पदमञ्जरी–3–1–93।
25. तस्मात् कर्त्तव्येम अतिङ्ग्रहणम्। रत्नप्रकाश, वहीं।
26. हेतुवदाभासमाना हेत्वाभासाः। तर्कभाषा–पदार्थ–13।
27. परि0–122।
28. अन्तवद्भावस्य प्रायिकत्वेन स्थानिवद्भावस्या भावाऽतिदेशकत्वेन निषेधकतया 'निषेधाश्च बलीयांस' इति न्यायेन 'अचः परस्मि'न्नित्यैव प्रवृत्तिरित्यपि बोध्यम्। उद्योत–वहीं।